स्थायित्व की भी कुछ प्रवृत्ति लेकर चलती है। यदि किसी भी रूप में स्थायित्व नहीं होगा और समाज-व्यवस्था तेजी के साथ बदलती जाएगी तो लोग शीघ्रता से अनुकूलन नहीं कर पाएंगे। ऐसी दशा में विघटन की भी सम्भावना रहेगी। अतः यह आवश्यक है कि समाज-व्यवस्था में नवीन परिस्थितियों के अनुरूप अपने आप को ढालने का गुण हो। परन्तु परिवर्तन इतने शीघ्रगामी भी नहीं होने चाहिए अथवा समाज-व्यवस्था ऐसी नहीं होनी चाहिए कि वह परिवर्तन को हर समय स्वीकार करने के लिए तैयार हो। कहने का तात्पर्य यह है कि समाज-व्यवस्था की निरन्तरता भी बनी रहनी चाहिए और उसमें अन्तर्जात और बाह्य कारणों से होने वाले परिवर्तनों को स्वीकार करने की क्षमता भी होनी चाहिए। भारतीय समाज की यह विशेषता है कि इसने परिस्थितियों के बदलने के साथ-साथ अपने आपको परिवर्तित किया है और आज हम नियोजित परिवर्तन की दिशा में आगे बढ़ रहे हैं। यद्यपि कहीं-कहीं प्रशासन सम्बन्धी कुछ कमियों तथा लोगों के रीति-रिवाजों को ध्यान में नहीं रखने के कारण विरोध भी हुआ है।

सामाजिक परिवर्तन के सिद्धान्त
(THEORIES OF SOCIAL CHANGE)

समाज में सामाजिक परिवर्तन किन कारणों से तथा किन नियमों के अन्तर्गत होता है, उसकी गति एवं दिशा क्या होती है, इन प्रश्नों को लेकर प्राचीन समय से ही विद्वान् अपने-अपने मत व्यक्त करते रहे हैं। प्रारम्भ में दार्शनिकों ने सामाजिक परिवर्तन के सिद्धान्त प्रस्तुत किये, बाद में समाजशास्त्रियों ने भी अपना योग दिया। सामाजिक परिवर्तन की व्याख्या कुछ विद्वानों ने सिद्धान्तों के प्रतिपादन द्वारा की है। उनका विश्वास है कि समाज में परिवर्तन इन्हीं नियमों एवं सिद्धान्तों के अनुसार होते हैं। 16वीं सदी में **जीन बोडिन** ने विश्व की विभिन्न सभ्यताओं के ऐतिहासिक अध्ययन के आधार पर यह मत व्यक्त किया कि समाज में परिवर्तन चक्रीय रूप में घटित होते हैं। यद्यपि उनकी यह बात उस समय पूर्णतया स्वीकार नहीं की गयी, किन्तु बाद में कुछ विद्वानों ने परिवर्तन के चक्रीय सिद्धान्तों को जन्म दिया। 18वीं सदी में फ्रांस में यह मत प्रचलित हुआ कि विचार और चिन्तन समाज में परिवर्तन उत्पन्न करते हैं। 19वीं सदी में कॉम्ट, हीगल एवं कार्ल मानहीम जैसे विचारकों ने सामाजिक परिवर्तन में विचारों की भूमिका को बहुत महत्व दिया। सामाजिक परिवर्तन के सन्दर्भ में उन विद्वानों ने भी सिद्धान्त प्रस्तुत किये जो समाज के उद्विकास एवं प्रगति को समझने में रुचि रखते थे। क्रॉम्ट, स्पेन्सर, हॉबहाउस, आदि विद्वानों ने कहा कि सामाजिक परिवर्तन एक सीधी रेखा में कुछ निश्चित स्तरों से होकर गुजरता है और प्रत्येक समाज को इन स्तरों से गुजरना होता है। ये स्तर कौन-से होंगे, इस बारे में उनमें मत-भिन्नता है। यह मत बाद में आने वाले समाज-वैज्ञानिकों जैसे, मॉर्गन, टायलर, हेनरीमैन, वेस्टरमार्क, हेड्डन एवं लेविब्रुहल, आदि ने भी स्वीकार किया और इस आधार पर परिवार, विवाह, धर्म, कला, तर्क एवं संस्कृति में परिवर्तन की उद्विकासीय प्रवृत्ति का उल्लेख किया। उस समय यह धारणा बनी कि परिवर्तन सदैव सरलता से जटिलता, समानता से असमानता तथा बुराई से अच्छाई की ओर होता है।

परिवर्तन की उद्विकासीय व्याख्या के विपरीत कुछ विद्वानों ने परिवर्तन की चक्रीय प्रकृति का उल्लेख किया। स्पेंग्लर, टायनबी, पेरेटो एवं सोरोकिन ने कहा है कि प्रत्येक समाज में परिवर्तन का एक चक्र चलता रहता है और हम जहां से प्रारम्भ होते हैं, घूम-फिरकर पुनः वहीं पहुंच जाते हैं। इस प्रकार प्रत्येक समाज उत्थान और पतन के दौर से गुजरता है। परिवर्तन की उद्विकासीय एवं चक्रीय व्याख्या के बाद कुछ विद्वानों ने किसी एक ही कारक को परिवर्तन के लिए उत्तरदायी ठहराकर परिवर्तन की निर्धारणवादी (Deterministic) व्याख्या प्रस्तुत की। **मार्क्स एवं वेबलिन** ने प्रौद्योगिकी एवं आर्थिक कारकों को, ऑगबर्न ने संस्कृति को, मैक्स वेबर ने धर्म को तथा माल्थस एवं सैडलर ने जनसंख्यात्मक कारकों को सामाजिक परिवर्तन के लिए उत्तरदायी ठहराया। सामाजिक परिवर्तन को स्पष्ट करने के लिए जितने भी सिद्धान्त अब तक प्रस्तुत किये गये हैं, हम उन्हें प्रमुख रूप से दो भागों में बांट सकते हैं—चक्रीय एवं रेखीय सिद्धान्त। हम यहां इन दोनों ही प्रकार के सिद्धान्तों का विवेचन करेंगे :

सामाजिक परिवर्तन के चक्रीय सिद्धान्त
(CYCLICAL THEORIES OF SOCIAL CHANGE)

चक्रीय सिद्धान्तकारों का मत है कि समाज में परिवर्तन का एक चक्र चलता है। हम जहाँ से प्रारम्भ होते हैं, घूम-फिरकर पुनः वहीं पहुंच जाते हैं। इस प्रकार के विचारों की प्रेरणा विद्वानों को सम्भवतः प्रकृति से मिली होगी। प्रकृति में हम देखते हैं कि ऋतु का एक चक्र चलता है और सर्दी, गर्मी एवं वर्षा की ऋतुएँ एक के बाद एक पुनः-पुनः आती हैं। इसी प्रकार से रात के बाद दिन एवं दिन के बाद रात का चक्र भी चलता रहता है। प्राणी भी जन्म और मृत्यु के दौर से गुजरते हैं। हम जन्म लेते हैं, युवा होते हैं, वृद्ध होते हैं और मर जाते हैं। मरकर फिर जन्म लेते हैं, और पुनः वही क्रम दोहराते हैं। परिवर्तन के इस चक्र को कई विद्वानों ने समाज पर भी लागू किया और कहा कि परिवार समाज और सभ्यताएँ उत्थान और पतन के चक्र से गुजरते हैं। इसकी पुष्टि के लिए उन्होंने विश्व की अनेक सभ्यताओं का उल्लेख किया और कहा कि इतिहास इस बात का साक्षी है कि जो सभ्यताएँ आज फल-फूल रही हैं और प्रगति के उच्च शिखर पर हैं, वे कभी आदिम और पिछड़ी अवस्था में थीं और आज जो सभ्यताएँ नष्टप्राय दिखायी दे रही हैं, भूतकाल में वे विश्व की श्रेष्ठ सभ्यताएँ रह चुकी हैं। इस प्रकार चक्रीय सिद्धान्तकार सामाजिक परिवर्तन को जीवन-चक्र के रूप में देखते हैं। चक्रीय सिद्धान्तकारों में स्पेंग्लर, टॉयनबी,

Scanned with CamScanner

पैरेटो एवं सोरोकिन प्रमुख हैं। हम यहाँ उनके सिद्धान्तों का उल्लेख करेंगे :

(1) स्पेंग्लर का सिद्धान्त (Theory of Oswald Spengler)

सामाजिक परिवर्तन के बारे में जर्मन विद्वान **ओस्वाल्ड स्पेंग्लर** ने 1918 में अपनी पुस्तक '*The Decline of the West*' में अपना चक्रीय सिद्धान्त प्रस्तुत किया। इस पुस्तक में उन्होंने सामाजिक परिवर्तन के उद्विकासीय सिद्धान्तों की आलोचना की और कहा कि परिवर्तन कभी भी एक **सीधी रेखा** (straight line) में नहीं होता है। स्पेंग्लर का मत है कि सामाजिक परिवर्तन का एक चक्र चलता है, हम जहाँ से प्रारम्भ होते हैं, घूम-फिरकर पुनः वहीं पहुँच जाते हैं। जैसे—मनुष्य जन्म लेता है, युवा होता है, वृद्ध होता है और मर जाता है तथा फिर जन्म लेता है। यही चक्र मानव समाज एवं सभ्यताओं में भी पाया जाता है। मानव की सभ्यता एवं संस्कृति भी उत्थान और पतन, निर्माण और विनाश के चक्र से गुजरती हैं। वे भी मानव शरीर की तरह जन्म, विकास और मृत्यु को प्राप्त होती हैं। अपनी बात को सिद्ध करने के लिए आपने विश्व की आठ सभ्यताओं (अरब, मिस्र, मेजियन, माया, रूसी एवं पश्चिमी संस्कृतियों, आदि) का उल्लेख किया और उनके उत्थान एवं पतन को दर्शाया। स्पेंग्लर ने पश्चिमी सभ्यता के बारे में कहा कि यह अपने विकास की चरम सीमा पर पहुँच गयी है। उद्योग एवं विज्ञान के क्षेत्र में उसने अभूतपूर्व प्रगति की है, किन्तु अब वह धीरे-धीरे क्षीणता एवं स्थिरता की स्थिति में पहुँच रही है, अतः इसका विनाश अवश्यम्भावी है। उन्होंने जर्मन संस्कृति के बारे में भी ऐसे ही विचार प्रकट किये और कहा कि यह भी अपनी चरम सीमा पर पहुँच गयी है और अब इसका पतन निकट है। स्पेंग्लर की भविष्यवाणी उस समय सत्य प्रतीत हुई जब द्वितीय विश्व-युद्ध के समय जर्मनी का पतन हुआ। स्पेंग्लर ने कहा कि युद्ध एवं शस्त्रों का निर्माण सभ्यता के पतन के सूचक हैं। उनका मत है कि भविष्य में, पश्चिमी समाजों का आज जो दबदबा है, समाप्त हो जायेगा और उनकी सम्पन्नता एवं शक्ति नष्ट हो जायेगी। आपने कहा कि दूसरी ओर एशिया के देश जो अब तक पिछड़े हुए थे, कमजोर एवं सुस्त थे, अपनी आर्थिक एवं सैनिक शक्ति के कारण प्रगति एवं निर्माण के पथ पर बढ़ेंगे। वे पश्चिमी समाजों के लिए एक चुनौती बन जायेंगे। इस प्रकार पश्चिम एवं एशिया के समाजों के उदाहरणों द्वारा स्पेंग्लर ने सामाजिक परिवर्तन की चक्रीय प्रवृत्ति को स्पष्ट किया है।

समालोचना—स्पेंग्लर के इस सिद्धान्त ने बहुत समय तक लोगों को अपनी ओर आकर्षित किया, किन्तु इसे पूरी तरह स्वीकार नहीं किया जा सकता। स्पेंग्लर ने संस्कृति एवं सभ्यता की तुलना सावयव से की है जिसे आज कोई स्वीकार नहीं करता। आपने ऐतिहासिक तथ्यों को तोड़-मरोड़कर अपने पक्ष की पुष्टि की तथा काल्पनिक आधार पर युद्धों से पश्चिमी समाज के विनाश की घोषणा की। स्पेंग्लर ने यह भी नहीं बताया कि किसी सभ्यता, समाज व संस्कृति का अन्तिम बिन्दु कौन-सा है जिसके बाद ह्रास प्रारम्भ हो जाता है। आपका यह कहना भी कि पश्चिमी समाज विकास के चरम स्वरूप को प्राप्त कर चुका है, त्रुटिपूर्ण है क्योंकि अब भी उसके विकास का कार्य जारी है। स्पेंग्लर के सिद्धान्तों को हम पूर्णतः वैज्ञानिक नहीं मान सकते। उनके सिद्धान्त से उनका निराशावाद प्रकट होता है।

(2) टॉयनबी का सिद्धान्त (Theory of Toynbee)

अर्नाल्ड जे. टॉयनबी एक अँग्रेज इतिहासकार थे। उन्होंने विश्व की 21 सभ्यताओं का अध्ययन किया तथा अपनी पुस्तक '*A Study of History*' में सामाजिक परिवर्तन का अपना सिद्धान्त प्रस्तुत किया। विभिन्न सभ्यताओं का अध्ययन करके आपने सभ्यताओं के विकास का एक सामान्य प्रतिमान ढूँढ़ा और सिद्धान्त का निर्माण किया। टॉयनबी के सिद्धान्त को **'चुनौती एवं प्रत्युत्तर का सिद्धान्त'** (Challenge and Response Theory of Social Change) भी कहते हैं। वे कहते हैं कि प्रत्येक सभ्यता को प्रारम्भ में प्रकृति एवं मानव द्वारा चुनौती दी जाती है। इस चुनौती का सामना करने के लिए व्यक्ति को अनुकूलन की आवश्यकता होती है, व्यक्ति इस चुनौती के प्रत्युत्तर में भी सभ्यता व संस्कृति का निर्माण करता है। इसके बाद भौगोलिक चुनौतियों के स्थान पर सामाजिक चुनौतियाँ दी जाती हैं। ये चुनौतियाँ समाज की भीतरी समस्याओं के रूप में अथवा बाहरी समाजों द्वारा दी जाती हैं। जो समाज इन चुनौतियों का सामना सफलतापूर्वक कर लेता है, वह जीवित रहता है और जो ऐसा नहीं कर सकता, वह नष्ट हो जाता है। इस प्रकार एक समाज निर्माण एवं विनाश तथा संगठन एवं विघटन के दौर से गुजरता है।

सिन्धु व नील नदी की घाटियों में ऐसा ही हुआ है। प्राकृतिक पर्यावरण ने वहाँ के लोगों को चुनौती दी जिसका प्रत्युत्तर उन्होंने निर्माण के द्वारा दिया। सिन्ध व मिस्र की सभ्यताएँ भी इसी प्रकार विकसित हुईं। गंगा व वोल्गा नदी ने भी ऐसी चुनौती दी, किन्तु इसका समुचित प्रत्युत्तर वहाँ के लोगों ने नहीं दिया। अतः वहाँ सभ्यताएँ नहीं पनपीं।

समालोचना—टॉयनबी का सिद्धान्त वैज्ञानिकता से दूर एक दार्शनिक सिद्धान्त प्रतीत होता है, किन्तु टॉयनबी स्पेंग्लर की तुलना में अधिक आशावादी हैं। उन्होंने परिवर्तन की समाजशास्त्रीय व्याख्या करने का प्रयास किया।

(3) पैरेटो का सिद्धान्त (Theory of Pareto)

विल्फ्रेड पैरेटो ने सामाजिक परिवर्तन का चक्रीय सिद्धान्त जिसे **अभिजात वर्ग के परिभ्रमण का सिद्धान्त** (Theory of Circulation of Elites) कहते हैं, का प्रतिपादन अपनी पुस्तक '*Mind and Society*' में किया। उन्होंने सामाजिक परिवर्तन

Scanned with CamScanner

को वर्ग व्यवस्था में होने वाले चक्रीय परिवर्तनों के आधार पर समझाया है। उनका मत है कि प्रत्येक समाज में हमें दो वर्ग दिखायी देते हैं : उच्च या अभिजात वर्ग तथा निम्न वर्ग। ये दोनों वर्ग स्थिर नहीं हैं वरन् इनमें परिवर्तन का चक्रीय क्रम पाया जाता है। निम्न वर्ग के व्यक्ति अपने गुणों एवं कुशलता में वृद्धि करके अभिजात वर्ग (Elite class) में सम्मिलित हो जाते हैं। अभिजात वर्ग के लोगों की कुशलता एवं योग्यता में धीरे-धीरे ह्रास होने लगता है और वे अपने गुणों को खो देते हैं तथा भ्रष्ट हो जाते हैं। इस प्रकार वे निम्न वर्ग की ओर बढ़ते हैं। उच्च या अभिजात वर्ग में उनके रिक्त स्थान को भरने के लिए निम्न वर्ग में जो व्यक्ति बुद्धिमान, चरित्रवान, कुशल, योग्य एवं साहसी होते हैं, ऊपर की ओर जाते हैं। इस प्रकार उच्च वर्ग से निम्न वर्ग में तथा निम्न वर्ग से उच्च वर्ग में जाने की प्रक्रिया चलती रहती है। इस चक्रीय गति के कारण सामाजिक संरचना में भी परिवर्तन आ सकता है। चूँकि यह परिवर्तन एक चक्रीय गति में होता है, इसलिए इसे सामाजिक परिवर्तन का 'चक्रीय' अथवा 'अभिजात वर्ग के परिभ्रमण का सिद्धान्त' कहते हैं। पैरेटो ने सामाजिक परिवर्तन के चक्रीय सिद्धान्त का उल्लेख राजनीतिक, आर्थिक एवं आदर्शात्मक तीनों क्षेत्रों में किया है।

राजनीतिक क्षेत्र में हमें दो प्रकार के व्यक्ति दिखायी देते हैं—शेर तथा लोमड़ियाँ। 'शेर' लोगों का आदर्शवादी लक्ष्यों में दृढ़ विश्वास होता है जिन्हें प्राप्त करने के लिए वे शक्ति का सहारा लेते हैं और 'शेर' वे लोग हैं जो सत्ता में होते हैं। चूँकि 'शेर' लोग शक्ति का प्रयोग करते हैं, अतः समाज में भयंकर प्रतिक्रिया हो सकती है, अतः वे कूटनीति का सहारा लेते हैं और शेर से अपने को 'लोमड़ियों' में बदल देते हैं तथा लोमड़ियों की तरह चालाकी से शासन चलाते हैं एवं सत्ता में बने रहते हैं, किन्तु निम्न वर्ग में भी कुछ लोमड़ियाँ होती हैं जो सत्ता को हथियाने की फिराक में होती हैं। एक समय ऐसा आता है कि उच्च वर्ग की लोमड़ियों से सत्ता निम्न वर्ग की लोमड़ियों के हाथ में आ जाती है। ऐसी स्थिति में सत्ता परिवर्तन के कारण राजनीतिक व्यवस्था एवं संगठन में भी परिवर्तन आता है। पैरेटो का मत है कि सभी समाजों में शासन के लिए तर्क के स्थान पर शक्ति का प्रयोग अधिक होता है। शासन करने वाले लोगों में जब बल का प्रयोग करने की इच्छा व शक्ति कमजोर हो जाती है तब वे शक्ति के स्थान पर लोमड़ियों की तरह चालाकी से काम लेते हैं। शासित वर्ग की लोमड़ियाँ उनसे अधिक चतुर होती हैं, अतः वे उच्च वर्ग की लोमड़ियों से सत्ता छीन लेती हैं। अतः जब शासक बदलते हैं एवं सत्ता परिवर्तित होती है तो समाज में भी परिवर्तन आता है।

आर्थिक क्षेत्र में पैरेटो ने दो वर्गों—सट्टेबाज (speculators) तथा निश्चित आय वर्ग (rentiers) का उल्लेख किया है। पहले वर्ग के लोगों की आय अनिश्चित होती है—कभी कम तथा कभी ज्यादा। इस वर्ग के लोग अपनी बुद्धि के द्वारा धन कमाते हैं। इसके विपरीत, दूसरे वर्ग की आय निश्चित होती है। प्रथम वर्ग के लोग आविष्कारक, उद्योगपति एवं कुशल व्यवसायी होते हैं, किन्तु इस वर्ग के लोग अपने हितों की रक्षा के लिए शक्ति एवं चालाकी का प्रयोग करते हैं, भ्रष्ट तरीके अपनाते हैं। इस कारण उनका पतन हो जाता है और उनका स्थान दूसरे वर्ग के ऐसे लोग ले लेते हैं जो ईमानदार होते हैं। इस वर्ग में परिवर्तन के साथ-साथ समाज की अर्थव्यवस्था में भी परिवर्तन आता है।

आदर्शात्मक क्षेत्र में भी दो प्रकार के व्यक्ति पाये जाते हैं—विश्वासवादी एवं अविश्वासी। कभी समाज में विश्वासवादियों का प्रभुत्व होता है, किन्तु जब वे रूढ़िवादी हो जाते हैं तो उनका पतन हो जाता है और उनका स्थान दूसरे वर्ग के लोग ले लेते हैं।

समालोचना—पैरेटो ने अपने चक्रीय सिद्धान्त को व्यवस्थित एवं बुद्धिमत्तापूर्ण ढंग से प्रस्तुत किया है फिर भी आप उन कारणों को स्पष्ट करने में असमर्थ रहे हैं जो वर्गों की स्थिति को परिवर्तित करते हैं।

(4) सोरोकिन का सांस्कृतिक गतिशीलता का सिद्धान्त (Sorokin's Theory of Cultural Dynamics)

सोरोकिन ने अपनी पुस्तक '*Social and Cultural Dynamics*' में सामाजिक परिवर्तन का सांस्कृतिक गतिशीलता का सिद्धान्त प्रस्तुत किया। उन्होंने मार्क्स, पैरेटो एवं वेबलिन के परिवर्तन सम्बन्धी सिद्धान्तों की आलोचना की। उनका मत है कि सामाजिक परिवर्तन उतार-चढ़ाव के रूप में घड़ी के पेण्डुलम की भाँति एक स्थिति से दूसरी स्थिति के बीच होता रहता है। उन्होंने प्रमुख रूप से दो संस्कृतियों—भावात्मक एवं चेतनात्मक—का उल्लेख किया। प्रत्येक समाज संस्कृति की इन दो धुरियों के बीच घूमता रहता है अर्थात् चेतनात्मक से भावात्मक की ओर तथा भावात्मक से चेतनात्मक की ओर आता-जाता रहता है। एक स्थिति से दूसरी स्थिति में जाने के दौरान मध्य में एक स्थिति ऐसी भी होती है जिसमें चेतनात्मक एवं भावात्मक संस्कृति का मिश्रण होता है। इसे सोरोकिन आदर्शात्मक संस्कृति कहते हैं। विभिन्न संस्कृतियों के दौर से गुजरने पर समाज में भी परिवर्तन आता है। इन तीनों प्रकार की संस्कृतियों की विशेषताओं का हम यहाँ संक्षेप में उल्लेख करेंगे :

(i) **चेतनात्मक संस्कृति (Sensate culture)**—चेतनात्मक संस्कृति को हम भौतिक संस्कृति भी कहते हैं। इस संस्कृति का सम्बन्ध मानव चेतना अथवा इन्द्रियों से होता है अर्थात् इसका ज्ञान हम देखकर, सूँघकर एवं छूकर कर सकते हैं। ऐसी संस्कृति में ऐन्द्रिक आवश्यकताओं व इच्छाओं की पूर्ति पर अधिक जोर

Scanned with CamScanner

दिया जाता है। इस संस्कृति में वैज्ञानिक आविष्कारों, प्रौद्योगिकी, भौतिक वस्तुओं एवं विलास की वस्तुओं का अधिक महत्व होता है। इसमें धर्म, नैतिकता, प्रथा, परम्परा एवं ईश्वर, आदि को अधिक महत्व नहीं दिया जाता है। व्यक्ति एवं सामूहिक पक्ष भी चेतनात्मक संस्कृति के रंग में रँगे होते हैं। पश्चिमी समाज चेतनात्मक संस्कृति का उदाहरण है।

(ii) **भावात्मक संस्कृति** (Ideational culture)—यह चेतनात्मक संस्कृति के बिल्कुल विपरीत होती है। इसका सम्बन्ध भावना, ईश्वर, धर्म, आत्मा व नैतिकता से होता है। यह संस्कृति आध्यात्मवादी संस्कृति कही जा सकती है। इसमें इन्द्रिय सुख के स्थान पर आध्यात्मिक उन्नति, मोक्ष एवं ईश्वर प्राप्ति को अधिक महत्व दिया जाता है। सभी वस्तुओं को ईश्वर कृपा का फल माना जाता है। विचार, आदर्श, कला, साहित्य, दर्शन एवं कानून सभी में धर्म एवं ईश्वर की प्रमुखता पायी जाती है, प्रथा और परम्परा पर अधिक बल दिया जाता है। इस संस्कृति में प्रौद्योगिकी एवं विज्ञान पिछड़ जाता है।

(iii) **आदर्शात्मक संस्कृति** (Ideal culture)—यह संस्कृति चेतनात्मक एवं भावात्मक दोनों का मिश्रण होती है, अतः इसमें दोनों की विशेषताएँ पायी जाती हैं। इसमें धर्म एवं विज्ञान, भौतिक एवं आध्यात्मिक सुख दोनों का सन्तुलित रूप पाया जाता है। सोरोकिन इस प्रकार की संस्कृति को ही उत्तम मानते हैं। इसलिए इसे वे आदर्शात्मक संस्कृति कहते हैं।

सोरोकिन का मत है कि विश्व की सभी संस्कृतियाँ चेतनात्मक से भावात्मक के झूले में झूलती रहती हैं। प्रत्येक संस्कृति अपनी चरम सीमा पर पहुँचकर पुनः दूसरे प्रकार की

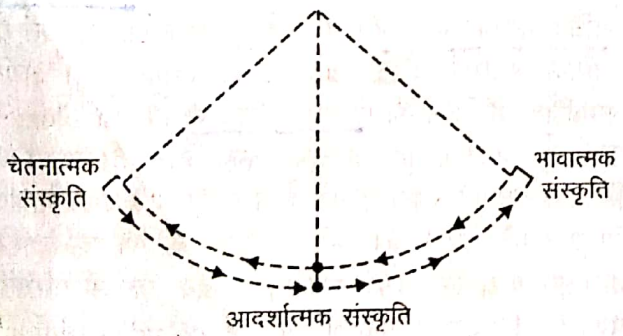

चित्र 2. सोरोकिन द्वारा प्रस्तुत सामाजिक परिवर्तन का क्रम

संस्कृति की ओर लौट जाती है। जैसा कि उपरोक्त चित्र से प्रकट होता है कि चेतनात्मक एवं भावात्मक संस्कृतियाँ परिवर्तन की केवल सीमाएँ हैं, समाज में अधिकांश समय तो आदर्शवादी संस्कृति ही प्रचलित रहती है। **संस्कृति में यह परिवर्तन क्यों होता है?** इसका कारण सोरोकिन ने प्राकृतिक नियम एवं संस्कृति के आन्तरिक कारण माने हैं क्योंकि परिवर्तन प्रकृति का नियम है, अतः संस्कृति भी इसी नियम के कारण परिवर्तित होती है। इसके अतिरिक्त, संस्कृति की आन्तरिक परिस्थितियाँ भी उसमें परिवर्तन के लिए उत्तरदायी हैं। सोरोकिन ने कहा है कि बीसवीं सदी की पश्चिमी सभ्यता चेतनात्मक संस्कृति की चरम सीमा पर पहुँच गयी है, अब वह पुनः भावात्मक संस्कृति की ओर लौट जायेगी। चूँकि संस्कृति का समाज से घनिष्ठ सम्बन्ध है, अतः जब संस्कृति में परिवर्तन होता है तो समाज में भी परिवर्तन आता है।

समालोचना—सोरोकिन ने अपने सिद्धान्त को वैज्ञानिक बनाने का प्रयत्न किया है, फिर भी उसमें कई कमियाँ हैं, जैसे—(i) संस्कृति को एक अवस्था से दूसरी अवस्था तक पहुँचने में इतना लम्बा समय लग जाता है कि इस आधार पर सामाजिक परिवर्तन की प्रकृति को प्रकट करना मुश्किल है। (ii) ऐतिहासिक प्रमाणों के आधार पर इस बात को सिद्ध करना सम्भव नहीं है कि सभी समाज एक प्रकार की संस्कृति से दूसरे प्रकार की संस्कृति के बीच परिवर्तन के दौर से गुजरते हैं। (iii) सोरोकिन सांस्कृतिक परिवर्तन के कारकों को भी स्पष्ट करने में असमर्थ रहे हैं। यह कह देना कि परिवर्तन प्राकृतिक कारणों से होते हैं एक वैज्ञानिक के लिए पर्याप्त नहीं है।

सामाजिक परिवर्तन के उद्विकासीय एवं रेखीय सिद्धान्त
(EVOLUTIONARY AND LINEAR THEORIES OF SOCIAL CHANGE)

सामाजिक परिवर्तन के रेखीय सिद्धान्तकार उद्विकासवादियों से प्रभावित थे। वे इस मत को नहीं मानते कि परिवर्तन चक्रीय गति से होता है वरन् उनका मत है कि परिवर्तन सदैव एक सीधी रेखा में नीचे से ऊपर की ओर विभिन्न चरणों में होता है। उद्विकासीय एवं रेखीय सिद्धान्तकारों में कॉम्ट, स्पेन्सर, हॉबहाउस, आदि प्रमुख हैं। कॉम्ट समाज के उद्विकासीय रूप को तीन स्तरों (धार्मिक से वैज्ञानिक तक), स्पेन्सर चार स्तरों (शिकारी से औद्योगिक तक), तथा मार्क्स पाँच स्तरों (आदिम साम्यवादी से आधुनिक साम्यवादी तक) के रूप में मानते हैं। मार्क्स एवं वेबलिन सामाजिक परिवर्तन के रेखीय क्रम को तो प्रस्तुत करते ही हैं, किन्तु ये दोनों ही आर्थिक एवं प्रौद्योगिक कारकों को अधिक महत्व देते हैं, अतः इनके सिद्धान्तों को निर्धारणवादी सिद्धान्त (Deterministic Theories) भी कहते हैं। हम यहाँ रेखीय एवं उद्विकासीय सिद्धान्तों का उल्लेख करेंगे :

(1) कॉम्ट का सिद्धान्त (Theory of Auguste Comte)

कॉम्ट ने सामाजिक परिवर्तन का सम्बन्ध मानव के बौद्धिक विकास से जोड़ा है। उन्होंने बौद्धिक विकास एवं सामाजिक परिवर्तन के तीन स्तर माने हैं :

Scanned with CamScanner

(i) धार्मिक स्तर (Theological Stage); (ii) तात्विक स्तर (Metaphysical Stage); (iii) वैज्ञानिक स्तर (Positive Stage)।

धार्मिक स्तर समाज की प्राथमिक अवस्था थी जिसमें मानव प्रत्येक घटना को ईश्वर एवं धर्म के सन्दर्भ में समझने का प्रयत्न करता था। विश्व की सभी क्रियाओं का आधार धर्म और ईश्वर को ही माना गया। उस समय अलग-अलग स्थानों पर धर्म के विभिन्न रूप; जैसे बहुदेववाद, एकदेववाद अथवा प्रकृति-पूजा प्रचलित थे। सामाजिक विकास का द्वितीय स्तर **तात्विक स्तर** है जिसमें मानव घटनाओं की व्याख्या उनके गुणों के आधार पर करता था। इस अवस्था में मानव का अलौकिक शक्ति में विश्वास कम हुआ और प्राणियों में विद्यमान अमूर्त शक्ति को ही समस्त घटनाओं के लिए उत्तरदायी माना गया। सामाजिक विकास का तीसरा स्तर वैज्ञानिक स्तर है जो कि वर्तमान में विद्यमान है। **वैज्ञानिक स्तर** में मानव सांसारिक घटनाओं की व्याख्या धर्म, ईश्वर एवं अलौकिक शक्ति के आधार पर नहीं करता वरन् वैज्ञानिक नियमों एवं तर्क के आधार पर करता है। वह कार्य और कारण के सह-सम्बन्धों को ज्ञात कर नियमों एवं सिद्धान्तों का प्रतिपादन करता है, मानव घटनाओं का अवलोकन कर उनकी तार्किक एवं वैज्ञानिक व्याख्या करके सत्य तक पहुँचने का प्रयास करता है। इस प्रकार चिन्तन के विकास के साथ-साथ सामाजिक संरचना, संगठन एवं व्यवस्थाओं का भी विकास एवं परिवर्तन हुआ है।

समालोचना—निःसन्देह समाज में होने वाले परिवर्तनों की एक योजनाबद्ध एवं क्रमबद्ध व्याख्या कॉम्ट का सराहनीय प्रयास है, किन्तु उनके इस सिद्धान्त को पूरी तरह सही नहीं माना जा सकता। उन्होंने मानव चिन्तन और सामाजिक विकास के जिन तीन स्तरों का उल्लेख किया है उन स्तरों से विश्व के सभी समाज गुजरे हों, यह आवश्यक नहीं है। ये स्तर किसी समाज में पहले व किसी में बाद में अथवा दो स्तर साथ-साथ भी चल सकते हैं।

(2) स्पेन्सर का सिद्धान्त (Spencer's Theory)

स्पेन्सर ने भी सामाजिक परिवर्तन का उद्विकासीय सिद्धान्त प्रस्तुत किया। आपने सामाजिक परिवर्तन को प्राकृतिक प्रवरण (natural selection) के आधार पर प्रकट किया है। स्पेन्सर डार्विन के उद्विकास से प्रभावित थे। डार्विन ने जीवों के उद्विकास का सिद्धान्त प्रतिपादित किया जिसे स्पेन्सर ने समाज पर भी लागू किया। डार्विन का मत था कि जीवों में अस्तित्व के लिए संघर्ष (struggle for existence) पाया जाता है। इस संघर्ष में वे ही प्राणी बचे रहते हैं जो शक्तिशाली होते हैं और प्रकृति से अनुकूलन कर लेते हैं, कमजोर इस संघर्ष में समाप्त हो जाते हैं (Survival of the fittest and elimination of the unfit)। चूँकि प्रकृति भी ऐसे जीवों का वरण करती है जो योग्य एवं सक्षम होते हैं, अतः इस सिद्धान्त को '**प्राकृतिक प्रवरण का सिद्धान्त**' कहते हैं। चूँकि मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है, अतः उसके प्रवरण अथवा जन्म और मृत्यु-दर पर सामाजिक कारकों; जैसे—प्रथाओं, मूल्यों एवं आदर्शों का भी प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष प्रभाव पड़ता है। इस प्रवरण में श्रेष्ठ मनुष्य ही बचे रहते हैं जो समाज का निर्माण करते हैं और उसमें परिवर्तन लाते हैं। प्रत्येक नयी पीढ़ी पुरानी पीढ़ी से ज्ञान और विज्ञान के क्षेत्र में अधिक उन्नत होती है और समाज को आगे की ओर बढ़ाती है, इस प्रकार समाज क्रमशः आगे बढ़ता और परिवर्तित होता जाता है। इस प्रकार स्पेन्सर सामाजिक परिवर्तन के लिए अप्राकृतिक एवं सामाजिक प्रवरण को आधार मानते हैं।

स्पेन्सर के अतिरिक्त जैविकीय कारकों को सामाजिक परिवर्तन के लिए उत्तरदायी मानने वालों में गोबिन्यू व लापोंज आदि भी प्रमुख हैं। इन विद्वानों की मान्यता है कि समाज का निर्माण और प्रगति उन लोगों द्वारा सम्भव है जो प्रजातीय दृष्टि से श्रेष्ठ होते हैं। जब किसी समाज में प्रजातीय दृष्टि से हीन व्यक्ति होते हैं तो वह समाज पतन की ओर जाता है और जब उसमें शारीरिक व मानसिक दृष्टि से श्रेष्ठ व्यक्ति होते हैं तो वह समाज प्रगति करता है।

स्पेन्सर व जीववादियों के सिद्धान्तों की अनेक विद्वानों ने यह कहकर आलोचना की कि मानव समाज पर प्राकृतिक प्रवरण को लागू नहीं किया जा सकता। इन्होंने परिवर्तन के अन्य सिद्धान्तों की अवहेलना की है।

(3) कार्ल मार्क्स का सिद्धान्त (Theory of Karl Marx)

कार्ल मार्क्स ने सामाजिक परिवर्तन को प्रौद्योगिक एवं आर्थिक कारकों से जनित माना है। अतः उनके सिद्धान्त को आर्थिक निर्धारणवाद (Economic Determinism) अथवा सामाजिक परिवर्तन का प्रौद्योगिक सिद्धान्त (Technological Theory of Social Change) कहा जाता है। मार्क्स का सिद्धान्त वर्तमान समय में सर्वाधिक महत्वपूर्ण एवं क्रान्तिकारी सिद्धान्त माना जाता है। उन्होंने इतिहास की भौतिक व्याख्या की और कहा कि मानव इतिहास में अब तक जो परिवर्तन हुए हैं, वे उत्पादन प्रणाली (mode of production) में परिवर्तन के कारण ही हुए हैं। उनका मत है कि जनसंख्या, भौगोलिक परिस्थितियों एवं अन्य कारणों का मानव के जीवन पर प्रभाव तो पड़ता है, किन्तु वे परिवर्तन के निर्णायक कारक नहीं हैं। निर्णायक कारक तो आर्थिक कारक अर्थात् उत्पादन प्रणाली ही है।

मार्क्स ने अपने सिद्धान्त को स्पष्ट करते हुए लिखा है कि मनुष्य को जीवित रहने के लिए कुछ भौतिक मूल्यों (जैसे—रोटी, कपड़ा, निवास, आदि) की आवश्यकता होती है। इन मूल्यों या आवश्यकताओं को जुटाने के लिए मानव को

Scanned with CamScanner

उत्पादन करना होता है। उत्पादन करने के लिए उत्पादन के साधनों (means of production) की आवश्यकता होती है। जिन साधनों के द्वारा व्यक्ति उत्पादन करता है, उन्हें प्रौद्योगिकी कहते हैं। प्रौद्योगिकी में छोटे-छोटे औजार तथा बड़ी-बड़ी मशीनें

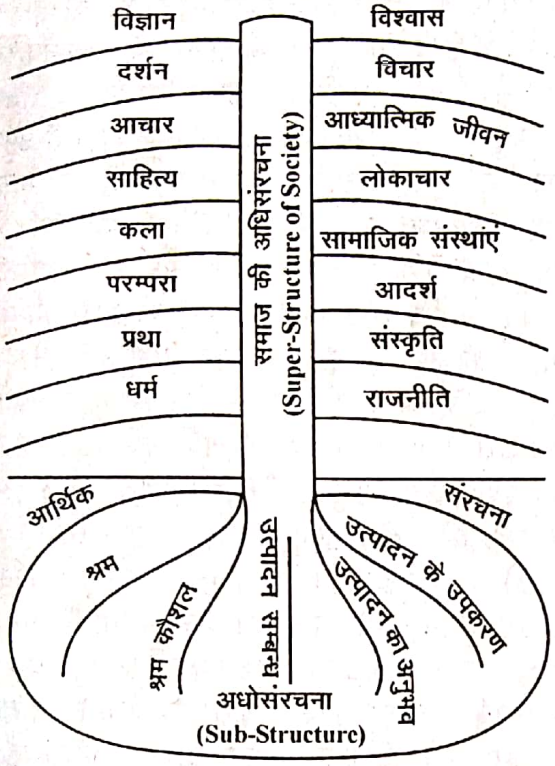

चित्र 3. **उत्पादन प्रणाली**

सम्मिलित हैं। प्रौद्योगिकी में जब परिवर्तन आता है तो उत्पादन प्रणाली में भी परिवर्तन आता है। मार्क्स का मत है कि मानव अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए किसी-न-किसी उत्पादन प्रणाली (mode of production) को अपनाता है। उत्पादन प्रणाली दो पक्षों से मिलकर बनी होती है, **एक**, उत्पादन के उपकरण या प्रौद्योगिकी, श्रमिक, उत्पादन का अनुभव एवं श्रम-कौशल और **दूसरा**, उत्पादन के सम्बन्ध। किसी भी वस्तु के उत्पादन के लिए हमें औजार, श्रम, अनुभव एवं कुशलता की आवश्यकता होती है। साथ ही जो लोग उत्पादन के कार्य में लगे होते हैं, उनके बीच कुछ आर्थिक सम्बन्ध भी पैदा हो जाते हैं; जैसे—किसान कृषि क्षेत्र में उत्पादन करने के दौरान मजदूरों, सुनार, लुहार एवं उसके द्वारा उत्पादित वस्तु के खरीदारों से सम्बन्ध बनाता है। जब उत्पादन प्रणाली में परिवर्तन होता है तो समाज में भी परिवर्तन आता है। उत्पादन प्रणाली की यह विशेषता है कि यह किसी भी अवस्था में स्थिर नहीं रहती, सदैव बदलती रहती है। उत्पादन प्रणाली समाज का मूल है और उसी पर समाज की सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक-राजनीतिक संरचनाएँ, विश्वास, कला, साहित्य, प्रथाएँ, विज्ञान एवं दर्शन टिके हुए हैं। जिस प्रकार की उत्पादन प्रणाली होती है समाज की 'अधिसंरचना' (Super-structure) अर्थात् ऊपरी संरचना जिसमें धर्म, प्रथाएँ, राजनीति, साहित्य, कला, विज्ञान एवं संस्कृति आदि आते हैं, भी उसी प्रकार की बन जाती है। जब उत्पादन प्रणाली बदलती है तो समाज की ऊपरी संरचना में भी परिवर्तन आता है और समाज की संस्थाएँ बदलती हैं तथा सामाजिक परिवर्तन घटित होता है। मार्क्स का कहना है कि जब हाथ की चक्की से उत्पादन किया जाता था तो एक विशेष प्रकार का समाज था और आज जब बिजली की चक्की है तो दूसरे प्रकार का समाज है जो पहले प्रकार के समाज से भिन्न है। इसी प्रकार कृषि का कार्य जब हल एवं बैलों की सहायता से तथा उत्पादन का कार्य कुटीर उद्योगों में छोटे-छोटे औजारों से किया जाता था तो एक विशेष प्रकार का समाज, संस्कृति, धर्म एवं राजनीति थी और आज जबकि कृषि में ट्रैक्टर एवं वैज्ञानिक साधनों का प्रयोग तथा बड़ी-बड़ी मशीनों एवं कारखानों द्वारा औद्योगिक उत्पादन हो रहा है तो एक भिन्न प्रकार का समाज पाया जाता है। इन दोनों अवस्थाओं की राजनीति, धर्म, संस्कृति, कला, साहित्य, दर्शन, प्रथा, नैतिकता एवं लोकाचारों में बहुत अन्तर है। अतः स्पष्ट है कि उत्पादन प्रणाली में परिवर्तन होने पर ही समाज में परिवर्तन आता है। उत्पादन में लगे लोगों के पारस्परिक सम्बन्धों में भी परिवर्तन आता है। आज के युग में पूँजीपति व श्रमिकों में जो सम्बन्ध पाये जाते हैं वे कृषि युग के भूस्वामियों एवं मजदूरों के सम्बन्धों से इसीलिए भिन्न हैं।

मार्क्स का मत है कि उत्पादन के सम्बन्धों के सम्पूर्ण योग से ही समाज की आर्थिक संरचना (Economic structure) का निर्माण होता है। उदाहरण के लिए, कृषि युग में जमींदारों, कृषकों एवं कृषि-श्रमिकों के बीच पाये जाने वाले सम्बन्धों से एक विशेष प्रकार की आर्थिक संरचना का निर्माण हुआ जिसे हम कृषि अर्थव्यवस्था कहते हैं। वर्तमान समय में पूँजीपतियों, कारखाने के स्वामियों एवं श्रमिकों के सम्बन्धों से मिलकर बनने वाली आर्थिक संरचना कृषि युग की आर्थिक संरचना से भिन्न है, इसे हम औद्योगिक आर्थिक संरचना या औद्योगिक अर्थव्यवस्था कहते हैं। संक्षेप में, मार्क्स के अनुसार उत्पादन प्रणाली में परिवर्तन ही सामाजिक परिवर्तन के लिए उत्तरदायी है। जब उत्पादन के उपकरणों (प्रौद्योगिकी), उत्पादन के कौशल, ज्ञान, उत्पादन के सम्बन्ध, आदि जो कि आर्थिक संरचना का निर्माण करते हैं, में परिवर्तन आता है तो सम्पूर्ण सामाजिक-सांस्कृतिक अधि-संरचना (Super-structure) में भी परिवर्तन आता है जिसे हम सामाजिक परिवर्तन कहते हैं।

मार्क्स का मत है कि इतिहास के प्रत्येक युग में दो वर्ग रहे हैं। मानव समाज का इतिहास इन दो वर्गों के संघर्ष का ही इतिहास है। आपने समाज के विकास को पाँच युगों में बाँटा और प्रत्येक युग में पाये जाने वाले दो वर्गों का उल्लेख किया। एक वह वर्ग जिसका उत्पादन के साधनों पर स्वामित्व रहा है

Scanned with CamScanner

और दूसरा वह जो श्रम के द्वारा जीवनयापन करता है। इन दोनों वर्गों में अपने-अपने हितों को लेकर संघर्ष होता है। प्रत्येक वर्ग-संघर्ष का अन्त नये समाज एवं नये वर्गों के उदय के रूप में हुआ है। वर्तमान में भी पूँजीपति और श्रमिक दो वर्ग हैं जो अपने-अपने हितों को लेकर संघर्षरत हैं। मार्क्स कहते हैं कि वर्गों की रचना एवं प्रकृति ही समाज व्यवस्था का निर्धारण करती है। एक युग के वर्ग-संघर्ष के परिणामस्वरूप नये वर्गों का जन्म होता है जो नयी समाज व्यवस्था को जन्म देता है। इस प्रकार वर्ग-संघर्ष एवं उसके परिणामस्वरूप नये वर्गों के जन्म के कारण ही समाज में परिवर्तन होते हैं। इस तरह मार्क्स ने सामाजिक परिवर्तन में वर्ग-संघर्ष की भूमिका को भी महत्वपूर्ण माना है।

समालोचना—(1) मार्क्स ने सामाजिक परिवर्तन के लिए केवल एक ही कारक—आर्थिक कारक (उत्पादन प्रणाली) को उत्तरदायी मानकर परिवर्तन के अन्य कारकों की अवहेलना की है। सामाजिक, धार्मिक, भौगोलिक एवं जनसंख्यात्मक कारकों का भी सामाजिक परिवर्तन में महत्वपूर्ण हाथ होता है और स्वयं आर्थिक कारक भी अन्य कारकों से प्रभावित होते हैं।

(2) मार्क्स कहते हैं कि सामाजिक परिवर्तन प्रौद्योगिकी, आर्थिक सम्बन्ध एवं आर्थिक संरचना में परिवर्तन के कारण आते हैं; किन्तु वे यह स्पष्ट करने में असमर्थ रहे हैं कि प्रौद्योगिकी, आदि में परिवर्तन क्यों होता है या उसे परिवर्तित करने वाले कौन-से कारक हैं?

(3) मार्क्स द्वारा प्रयुक्त शब्दों; जैसे आर्थिक कारक, उत्पादन की शक्तियाँ तथा सम्बन्ध, आर्थिक सुधार, प्रौद्योगिकी, आदि की स्पष्टतः व्याख्या नहीं की गयी है। कुछ विद्वान इसमें केवल आर्थिक प्रविधियों को ही सम्मिलित करते हैं जबकि एन्जिल एवं सेलिगमैन आदि ने उत्पादन से सम्बन्धित सभी दशाओं को आर्थिक कारकों के अन्तर्गत सम्मिलित किया है।

(4) मार्क्स ने वर्ग-संघर्ष पर अधिक जोर दिया है, किन्तु समाज की नींव संघर्ष पर नहीं वरन् सहयोग पर आधारित है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि मार्क्स ने सामाजिक परिवर्तन के सिद्धान्त को वैज्ञानिक आधार प्रदान करने का पूरा प्रयास किया है फिर भी आपने आर्थिक कारकों पर आवश्यकता से अधिक बल दिया। मानव केवल अपनी आर्थिक आवश्यकताओं को पूरा करने वाला पुतला मात्र ही नहीं है। **मैक्स वेबर** ने मार्क्स के सिद्धान्त की आलोचना की है। वे आर्थिक कारकों के स्थान पर धर्म को सामाजिक परिवर्तन का आधार मानते हैं।

(4) थॉर्सटीन वेबलिन का सिद्धान्त (Theory of Thorstein Veblen)

वेबलिन सामाजिक परिवर्तन के लिए प्रौद्योगिक दशाओं को उत्तरदायी मानते हैं। उनका मत है कि प्रौद्योगिक दशाएँ प्रत्यक्ष रूप से सामाजिक परिवर्तन के लिए उत्तरदायी हैं। इसलिए उनके सिद्धान्त को '**प्रौद्योगिक निर्णयवाद**' कहा जाता है। वेबलिन ने मानवीय विशेषताओं को दो भागों में विभाजित किया है : (i) **स्थिर विशेषताएँ**—जिनका सम्बन्ध मानव की मूलप्रवृत्तियों और प्रेरणाओं से है जिनमें बहुत कम परिवर्तन होता है। (ii) **परिवर्तनशील विशेषताएँ**, जैसे—आदतें, विचार, मनोवृत्तियाँ, आदि। सामाजिक परिवर्तन का सम्बन्ध मानव की इन दूसरी विशेषताओं से है, विशेष रूप से मानव की विचार करने की आदतों से। वेबलिन का सिद्धान्त इस प्रकार है :

मनुष्य अपनी आदतों द्वारा नियन्त्रित होता है और वह उनका दास है। वे आदतें किस प्रकार की होंगी, यह मानव के भौतिक पर्यावरण पर निर्भर है, भौतिक पर्यावरण में भी विशेषकर प्रौद्योगिकी पर। जब भौतिक पर्यावरण अर्थात् प्रौद्योगिकी में परिवर्तन आता है तो मानव की आदतें भी बदलती हैं। मानव की आदतों का निर्माण कैसे होता है? इसका उत्तर देते हुए वेबलिन कहते हैं कि मानव जिस प्रकार के कार्य तथा प्रविधि द्वारा अपना जीवनयापन करता है, उसी प्रकार की उसकी आदतें एवं मनोवृत्तियाँ होती हैं। जीवनयापन के लिए मनुष्य जिस प्रकार की प्रविधि को अपनाता है, अपनी आदतों को भी वह उसके अनुकूल ढालता है। ये आदतें व्यक्ति को एक निश्चित प्रकार का जीवन व्यतीत करने को बाध्य करती हैं और उसके द्वारा किया जाने वाला कार्य उसके विचारों को प्रभावित करता है। मानव जिस प्रकार का कार्य करता है, वैसा ही सोचता भी है। उदाहरण के लिए, सैनिक, कृषक, डॉक्टर, इंजीनियर, आदि जिस प्रकार का कार्य करते हैं उनके विचार एवं आदतें भी वैसी ही हो जाती हैं। मनुष्य जीवनयापन के लिए कौन-सा कार्य करेगा, यह उसके भौतिक पर्यावरण पर निर्भर है। भौतिक पर्यावरण मानव के कार्य को एवं कार्य मानव के विचारों एवं आदतों को निश्चित करता है। उदाहरण के लिए, कृषि युग में मानव जीवनयापन के लिए एक विशेष प्रौद्योगिकी को काम में लाता था, उसी के अनुसार उसका भौतिक पर्यावरण भी बना हुआ था। कृषि कार्य के आधार पर ही मानव की आदत एवं मनोवृत्तियाँ बनी हुई थीं, किन्तु जब मशीनों का आविष्कार हुआ तो मानव का भौतिक पर्यावरण बदला, प्रौद्योगिकी बदली, काम की प्रकृति बदली और उसके साथ-साथ मानव की आदतों एवं मनोवृत्तियों में भी परिवर्तन आया।

आदतें ही धीरे-धीरे स्थापित एवं सुदृढ़ होकर संस्थाओं का रूप ग्रहण करती हैं। संस्थाएँ ही सामाजिक ढाँचे का निर्माण करती हैं। अतः जब आदतों में परिवर्तन होता है तो सामाजिक संस्थाओं एवं ढाँचे में भी परिवर्तन आता है जिसे हम सामाजिक परिवर्तन कहते हैं। संक्षेप में, वेबलिन के विचारों को हम इस प्रकार प्रकट कर सकते हैं—मानव अपनी आदतों द्वारा नियन्त्रित होता है, आदतों का निर्माण भौतिक पर्यावरण एवं प्रौद्योगिकी के अनुसार होता है, आदतें ही सामाजिक संस्थाओं का निर्माण करती हैं एवं सामाजिक संस्थाएँ सामाजिक ढाँचे का। अतः जब

Scanned with CamScanner

प्रौद्योगिक एवं भौतिक पर्यावरण में परिवर्तन होता है तो मानव की आदतों, संस्थाओं एवं सामाजिक ढाँचे में भी परिवर्तन आता है। सामाजिक संरचना में परिवर्तन ही सामाजिक परिवर्तन है। इस प्रकार वेबलिन सामाजिक परिवर्तन को नवीन प्रविधियों एवं प्रौद्योगिकीय कारकों से जनित मानते हैं। इसलिए ही उन्हें प्रौद्योगिक निश्चयवादी कहा जाता है। वेबलिन भौतिक पर्यावरण में परिवर्तन को एक स्वाभाविक घटना मानते हैं।

समालोचना—वेबलिन के सिद्धान्त में भी लगभग वही कमियाँ हैं जो मार्क्स के सिद्धान्त में हैं क्योंकि उन्होंने भी मार्क्स की तरह प्रौद्योगिकी को ही सामाजिक परिवर्तन का कारक माना है।

(1) वेबलिन ने मानव को अपनी आदतों द्वारा नियन्त्रित प्राणी माना है, लेकिन यह सही नहीं है। मानव आदत के बजाय अपने विवेक से अधिक नियन्त्रित होता है। (2) प्रौद्योगिक परिवर्तन से ही सामाजिक परिवर्तन आता है, यह कहना उचित नहीं है क्योंकि कभी-कभी भौतिक पर्यावरण बिल्कुल नहीं बदलता फिर भी नैतिक, धार्मिक एवं अन्य कारकों के कारण समाज में परिवर्तन आ जाता है। (3) वेबलिन का सिद्धान्त भी उसी प्रकार से एकपक्षीय है जिस प्रकार से अन्य कारकवादियों या निर्धारणवादियों के सिद्धान्त। सामाजिक परिवर्तन किसी एक कारक का प्रतिफल न होकर कई कारकों का परिणाम है। यह एक जटिल प्रक्रिया है जिसे वेबलिन ने अति सरल रूप में प्रस्तुत किया है।

मार्क्स एवं वेबलिन के सिद्धान्तों की तुलना
(COMPARISON OF MARX AND VEBLEN'S THEORIES)

कई बार ऐसा प्रतीत होता है कि मार्क्स एवं वेबलिन के सिद्धान्तों में कोई अन्तर नहीं है, वे समान ही प्रतीत होते हैं। फिर भी उनमें स्पष्ट अन्तर पाये जाते हैं जो इस प्रकार हैं :

(1) मार्क्स ने सामाजिक परिवर्तन के सिद्धान्त का प्रतिपादन एक विशेष उद्देश्य को लेकर किया। वे पूँजीवादी व्यवस्था को समाप्त करके उसके स्थान पर समाजवादी एवं वर्ग-विहीन समाज की स्थापना करना चाहते थे। इस कारण उनका सिद्धान्त पक्षपातपूर्ण एवं अवैज्ञानिक भी बन गया। इनके विपरीत, वेबलिन का कोई लक्ष्य नहीं था, वे तो परिवर्तन को एक निरन्तर प्रक्रिया के रूप में प्रकट करना चाहते थे। साथ ही वे सामाजिक उद्विकास तथा प्रौद्योगिकी के प्रभाव को भी बताना चाहते थे।

(2) मार्क्स ने सामाजिक परिवर्तन के लिए वर्ग-संघर्ष को आवश्यक माना है जबकि वेबलिन ने नहीं।

(3) मार्क्स ने प्रौद्योगिकी को सामाजिक परिवर्तन का अप्रत्यक्ष कारक माना है जबकि वेबलिन इसे एक प्रत्यक्ष कारक मानते हैं। मार्क्स आर्थिक संरचना को सामाजिक-सांस्कृतिक संरचना का आधार मानते हैं जबकि वेबलिन भौतिक पर्यावरण एवं प्रौद्योगिक दशाओं को आदतों एवं संस्थाओं को निर्धारित करने वाला कारक।

(4) वेबलिन सामाजिक परिवर्तन के लिए आदतों में परिवर्तनों को महत्वपूर्ण मानते हैं जबकि मार्क्स ने इस मनोवैज्ञानिक तथ्य की अवहेलना की है।

चक्रीय तथा रेखीय सिद्धान्तों में भेद
(DISTINCTION BETWEEN CYCLIC AND LINEAR THEORIES)

चक्रीय एवं रेखीय सिद्धान्तों के बीच पाये जाने वाले भेदों को हम इस प्रकार प्रकट कर सकते हैं :

(1) चक्रीय सिद्धान्त के अनुसार परिवर्तन का एक चक्र चलता है। हम जहां से प्रारम्भ होते हैं, घूम-फिरकर पुनः उसी स्थिति में आ जाते हैं जबकि रेखीय सिद्धान्त यह विश्वास करता है कि परिवर्तन एक सीधी रेखा में होता है। हम क्रमशः आगे बढ़ते जाते हैं और जिस चरण को हम त्याग चुके होते हैं, पुन वहां कभी नहीं लौटते हैं।

(2) चक्रीय सिद्धान्त में परिवर्तन उच्चता से निम्नता और निम्नता से उच्चता की ओर होता है, किन्तु रेखीय सिद्धान्त यह विश्वास करता है कि परिवर्तन सदैव निम्नता से उच्चता की ओर तथा अपूर्णता से पूर्णता की ओर होता है।

(3) चक्रीय सिद्धान्त के अनुसार परिवर्तन का चक्र तेज व मन्द दोनों ही हो सकता है जबकि रेखीय सिद्धान्त परिवर्तन की मन्द गति में विश्वास करता है।

(4) रेखीय सिद्धान्त चक्रीय सिद्धान्त की अपेक्षा उद्विकासवादियों से अधिक प्रभावित है।

(5) चक्रीय सिद्धान्तकारों ने परिवर्तन के चक्र को ऐतिहासिक एवं अनुभवसिद्ध प्रमाणों के आधार पर प्रकट करने का प्रयास किया है, जबकि रेखीय सिद्धान्तकारों ने रेखीय परिवर्तन को एक सैद्धान्तिक जामा पहनाया है।

(6) रेखीय सिद्धान्तकार यह मानते हैं कि सामाजिक परिवर्तन मानवीय प्रयत्न व इच्छा से स्वतन्त्र है तथा ऐसे परिवर्तन स्वतः उत्पन्न होते हैं जबकि चक्रीय सिद्धान्तकार यह मानते हैं कि परिवर्तन का चक्र मानवीय प्रयत्नों एवं प्राकृतिक प्रभावों का परिणाम है।

(7) रेखीय सिद्धान्तकार परिवर्तन के किसी एक प्रमुख कारण पर अधिक बल देते हैं, इस अर्थ में वे निर्धारणवादियों के अधिक निकट हैं जबकि चक्रीय सिद्धान्तकार परिवर्तन को अनेक कारकों का प्रतिफल मानते हैं, और साथ ही कहते हैं कि परिवर्तन प्रकृति का नियम है। अतः यह स्वतः ही घटित होता रहता है।

(8) रेखीय सिद्धान्तकार यह मानते हैं कि परिवर्तन के चरण एवं क्रम विश्व के सभी समाजों में एकसमान ही रहते.

Scanned with CamScanner

हैं; जैसे शिकारी अवस्था, पशुचारण अवस्था, कृषि अवस्था और औद्योगिक अवस्था सभी समाजों में आती हैं। दूसरी ओर चक्रीय सिद्धान्तकारों की मान्यता है कि विभिन्न सामाजिक संगठनों व संरचनाओं की सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया एवं प्रकृति में अन्तर पाया जाता है।

सामाजिक परिवर्तन के अन्य सिद्धान्त
(OTHER THEORIES OF SOCIAL CHANGE)

उपर्युक्त सिद्धान्तों के अतिरिक्त सामाजिक परिवर्तन के कुछ अन्य सिद्धान्त भी हैं जिनका हम यहां संक्षेप में उल्लेख करेंगे। **माल्थस ने सामाजिक परिवर्तन के लिए जनसंख्या वृद्धि का सिद्धान्त प्रस्तुत किया।** उनका मत है कि मानव समाज में खाद्य-पदार्थों के उत्पादन की तुलना में जनसंख्या वृद्धि तीव्र गति से होती है। जनसंख्या वृद्धि ज्यामितिक प्रकार से अर्थात् 1, 2, 4, 8, 16, 32, 64, आदि के क्रम में होती है। इसकी तुलना में खाद्य-सामग्री की वृद्धि अंकगणितीय प्रकार से अर्थात् 1, 2, 3, 4, 5, 6, 7, आदि के क्रम में होती है। फलस्वरूप एक समय ऐसा आता है जब जनसंख्या के लिए खाद्य-पदार्थों का अभाव हो जाता है। यदि बढ़ती जनसंख्या पर रोक नहीं लगायी जाती है तो किसी भी देश की जनसंख्या 25 वर्षों में दुगनी हो जाती है। जब जनसंख्या बढ़ती है या घटती है तो समाज में परिवर्तन घटित होते हैं।

सैडलर ने भी जनसंख्या सम्बन्धी सिद्धान्त का समर्थन किया और जनसंख्या वृद्धि का सम्बन्ध मानव की सुख-समृद्धि एवं पारस्परिक सम्बन्धों से जोड़ा है। वे यह मानते हैं कि मानव के विकास के साथ-साथ उसकी सन्तानोत्पत्ति की क्षमता में कमी आयी है और सुख-समृद्धि में वृद्धि हुई है। ये सभी बातें सामाजिक परिवर्तन के लिए भी उत्तरदायी हैं। **थॉमस** ने सामाजिक परिवर्तन के लिए विभिन्न संस्कृतियों के मिश्रण एवं सात्मीकरण को उत्तरदायी माना है।

मैक्स वेबर ने अपनी पुस्तक 'दी प्रोटेस्टेण्ट एथिक एण्ड दी स्पिरिट ऑफ कैपिटलिज्म' में धर्म को ही सामाजिक परिवर्तन के लिए उत्तरदायी माना। उनका मत है जब यूरोप में रोमन कैथोलिक धर्म था तो एक दूसरे प्रकार का समाज था, किन्तु जब **प्रोटेस्टैण्ट धर्म** आया तो आधुनिक पूंजीवादी समाज की नींव पड़ी। उन्होंने विश्व के छः महान् धर्मों (हिन्दू, ईसाई, इस्लाम, चीनी, आदि) का अध्ययन करके बताया कि केवल प्रोटेस्टैण्ट धर्म में ही वे बातें मौजूद थीं जो आधुनिक पूंजीवाद को जन्म दे सकती थीं। उनका मत है कि प्रत्येक धर्म के आचरण के नियम पाये जाते हैं जो लोगों के विचारों एवं व्यवहारों को तय करते हैं। अतः जब धर्म बदलता है तो समाज में भी परिवर्तन आता है। धर्म को वे परिवर्तन लाने वाला 'चल' (Variable) मानते हैं। प्रोटेस्टैण्ट धर्म की आर्थिक आचार-संहिता में कुछ तत्व इस प्रकार बताये गये हैं : ईमानदारी सबसे अच्छी नीति है, एक पैसा बचाना एक पैसा कमाना है, समय ही धन है, पैसा पैसे को पैदा करता है, जल्दी सोना और जल्दी जागना मनुष्य को स्वस्थ, अमीर और बुद्धिमान बनाता है, कार्य ही पूजा है, इत्यादि। इन सभी आचार नियमों ने प्रोटेस्टैण्ट मतावलम्बियों के जीवन एवं व्यवहार को प्रभावित किया और आधुनिक पूंजीवाद को जन्म दिया जिससे कि समाज-व्यवस्था ही बदल गयी। वेबर के सिद्धान्त की भी कई आलोचनाएं की जाती हैं। वे यह स्पष्ट नहीं कर सके कि स्वयं धर्म में परिवर्तन क्यों आता है।

ऑगबर्न ने अपनी पुस्तक '*Social Change*' में 1922 **में सामाजिक परिवर्तन के 'सांस्कृतिक विलम्बना' नामक सिद्धान्त का प्रतिपादन किया।** उन्होंने संस्कृति को दो भागों में बांटा— भौतिक एवं अभौतिक संस्कृति। भौतिक संस्कृति के अन्तर्गत हम हजारों भौतिक वस्तुओं, जैसे वायुयान, रेल, पंखा, घड़ी, बर्तन, फर्नीचर, वस्त्र, पुस्तकें, आदि को ले सकते हैं। अभौतिक संस्कृति में धर्म, कला, दर्शन, ज्ञान, विज्ञान, विश्वास, साहित्य, आदि को गिन सकते हैं। ऑगबर्न की मान्यता है कि पिछले कुछ वर्षों में दोनों ही संस्कृतियों में बहुत विकास हुआ है। उनका मत है कि अभौतिक संस्कृति की तुलना में भौतिक संस्कृति तीव्र गति से बदलती है। इस कारण भौतिक संस्कृति आगे बढ़ जाती है और अभौतिक संस्कृति उससे पिछड़ जाती है। **भौतिक संस्कृति का आगे बढ़ जाना व अभौतिक संस्कृति का पीछे रह जाना ही 'सांस्कृतिक पिछड़न या सांस्कृतिक विलम्बन कहलाता है।** यह दशा संस्कृति में असन्तुलन की दशा है। इस असन्तुलन को समाप्त करने के लिए सामंजस्य तथा अनुकूलन का प्रयत्न किया जाता है, इस दौरान समाज में भी परिवर्तन होते हैं। इसी प्रकार से जब इन दो संस्कृतियों में असन्तुलन पैदा होता है तो समाज पर भी उसका प्रभाव पड़ता है, उसमें भी परिवर्तन आते हैं। ऑगबर्न के इस सिद्धान्त की विस्तार व्याख्या सामाजिक परिवर्तन के सांस्कृतिक कारकों के अन्तर्गत की गयी है।

Scanned with CamScanner